Cognitive Thinking: An International Journal of Interdisciplinary Studies
Vol. 2, Issue-2 (April-June, 2026), pp.381-388, ISSN: 3107-5088, www.cognitivethinking.in

समाजिक न्याय के पहलू के विविध आयाम
(Diverse dimensions of the aspect of social justice)

डॉ. सुरेन्द्र नाथ यादव
एल.एल.एम., नेट, पी.एच.डी., प्राचार्य, जनहित कॉलेज ऑफ ला, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उ.प्र.

Article: Received: 15/06/2026, Accepted: 25/06/2026, Published:30/06/2026.
D.O.I. https://doi.org/10.5281/zenodo.22081951

@ 2026 The Author(s). This is an Open Access article/ Journal distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are properly credited. (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/)

"Social Justice, the ideological signature of our constitution, is Vasudhaiva Kutumbkam or Lokah Samatha Sukhino Bavantu which is the finger print of our cultural heritage".[1]

(''वसुधैव कुटुम्बकम् या लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तुः'')

सार: भारतीय प्रजातंत्र भारतीय दुर्बलतर वर्गों के हित साधन की कहानी को सामाजिक न्याय के भित्ति पर अवस्थित कर अनुच्छेद 15(3), 15(4) तथा 16(4) के तंत्र द्वारा पल्लवित पुष्पित करने में अग्रसर रहा है। अनुच्छेद 46 तथा प्रायः भाग 4 के सभी अनुच्छेद सामाजिक न्याय को, दुर्बलतर वर्ग को अनुभूतित कराने के संकल्प के प्रतिमान है। आरक्षण उन्हें दुर्बलता की सीढ़ी से ऊँचा उठाकर सबलता के छत पर पहुँचाने का साधन है, उच्चतम न्यायालय के अनुसार सामाजिक न्याय की अवधारणा एक क्रान्तिकारी कदम का जीवित स्वरूप है। इससे विधि में शासन को शक्ति मिलती है तथा लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को बल मिलता है।[2] एयर इन्डिया स्टेट्यूटरी कारपोरेशन बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन[3] में न्यायमूर्ति के. रामा स्वामी ने यह कहा है कि सामाजिक न्याय गरीबों, दुर्बलों, दलितों, जनजातियों तथा वंचित वर्गों की दुख–दर्द की कहानियों की को सुखान्त में बदलने की तकनीक है। यह तकनीक उन्हें समानता के स्तर पर लाकर गौरवमय जीवनयापन करने में सक्षम बनाने की तकनीक है। सामाजिक न्याय की अवधारणा जटिल सामाजिक रूपान्तरण का आवश्यक भाग है। भारतीय समाज में, जहाँ असफल का वातावरण व्याप्त है तथा समता एवं असमता के बीच की अन्तरक रेखा बहुत चौड़ी है, सामाजिक न्याय गरीबों के लिए सामाजिक न्याय की सीढ़ी पर चढ़ने का उत्प्रेरक कदम है।

मुख्य शब्द: सामाजिक न्याय, आरक्षण, संवैधानिक समानता, कमजोर वर्ग, सामाजिक लोकतंत्र, संरक्षणात्मक भेदभाव, सामाजिक उत्थान

सामाजिक न्याय की अवधारणा मानव गतिविधि के प्रत्येक पहलू को स्वयं समाहित किये हुए है। सामाजिक न्याय एवं समता एक दूसरे के पूरक है तथा दोनों ही समाज की जीवनशक्ति है। परिणामदायी समता लाने के लिए विधि का शासन एक प्रबलतंत्र है।[4]

1. न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर, सोशल जस्टिस सनसेट आर डाम इस्टर्न बुक कम्पनी, लालबाग, लखनऊ, 1987, पृ. 58.
2. वर्कर्स ऑ गोल्ड माईन का मामला, ए.आई.आर. 1955 सु.को. 923, म्यूर मिल्स कम्पनी लिमिटेड, बनाम सूती मिल्स मजूदूर यूनियन ए.आई.आर. 1955 सु.को. 70, पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम रामकुँवर, ए.आई.आर. 1957, पृ. 276.
3. ए.आई.आर. 1957, पृ. 645.
4. रिसर्च सेन्टर बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1995 सु.को. 922, सोमनाथ बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1997, सु.को. 3297.

इस सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर के उद्‌गार अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[1] हमें अपने राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र में बदलना चाहिए। बिना सामाजिक प्रजातंत्र को नीव के राजनीतिक प्रजातंत्र का अस्तित्व बहुत दिनों तक नहीं बना रह सकता। सामाजिक प्रजातंत्र का तात्पर्य है, जीवनयापन की वह पद्धति जिसमें स्वतंत्रता, समता तथा बंधुता जीवन के सिद्धान्त बने रहते हैं। इन तीनों की त्रिवेणी में तीनों का अलग–अलग अस्तित्व नहीं है। ये तीनों आपस में इस तरह जुड़े हुए हैं कि यदि एक को दूसरे से अलग कर दिया जाय तो प्रजातंत्र का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। अतः हमें सामाजिक जीवन के विरोधाभास को अति सीघ्र ही समाप्त करना होगा नही ंतो असफलता से पीड़ित लोग इस प्रजातंत्र तो विनष्ट कर देंगे जिन्हें अत्यन्त अथक परिश्रम से संविधान निर्मात्री सभा ने सार्थक रूप दिया है।

न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्ण अय्यर के अनुसार[2] सामाजिक न्याय की अवधारणा एक उदारचेता अवधारणा है जो समाज के प्रत्येक सदस्य को एक ऋजुतापूर्ण व्यवहार को सुनिश्चित करती है। कोई भी कलह, अन्याय, पीड़ा या निर्दयता से पीड़ित व्यक्ति, जिसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है, सामाजिक न्याय उसके लिए पूर्ण उपचार है।

सामाजिक न्याय प्रत्येक व्यक्ति की मानव गरिमा का दैवीय क्रान्ति में सटी हुई अवधारणा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की सृजनात्मक प्रतिमा पल्लवित–पुष्पित हो सकेगी।[3]

माननीय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के अनुसार सामाजिक न्याय का उदात्त निर्गम मात्र सैद्धान्तिक सूत्र नहीं है, वरन् हमारी राष्ट्रीय नियति के मिलन बिन्दु का सार तत्व है। संविधान की प्रस्तावना तथा भाग चार इसके मुख्य स्रोत है।[4]

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय का कोमल कमनीय पौधा संविधानिक तत्वों सांविधानिक पृष्ठों तक सीमित न रहकर सक्रिय न्यायिक पदयात्रा का साथ पाकर कार्यरतता तथा व्यावहारिकता एवं यथार्थता को धरातल पर पल्लवित–पुष्पित होकर पिछड़े वर्ग को गरिमामय जीवन का पथ प्रशस्त कर रही है।

अनुसूचित जाति तथा जनजाति सत्ता–अधिक्य से संयुक्त वर्ग आरक्षण के नाम पर सभी सुविधाओं का उपयोग कर रहा है। उस वर्ग को सत्ता–सुख के पथ के फूल पग–पग पर सुविधाओं का सुगंध प्रदान कर रहे हैं, जबकि इसी वर्ग के सत्ता–दारिद्रय से पीड़ित वर्ग को पग–पग पर कठिनाइयों के कांटे चुभन की प्रतिक्रिया कर रहे हैं। सत्ता अधिक्य वाले वर्ग से कुछ सुविधाएँ लेकर, उन्हें मलाईदार वर्ग में प्रतिस्थापित करने का सुझाव अपने अद्यतन निर्णय में माननीय न्यायमूर्ति गवई ने दिया है, जिनका बेंच के अन्य तीन न्यायाधीशों ने समर्थन किया है।[5] न्यायमूर्ति गवई ने स्पष्ट रूप से कहा है कि राज्य यानी शासन प्रणाली को एक नीति लानी चाहिए जो अनुसूचित जाति–जनजाति वर्गों में क्रीमी लेयर की पहचान कर सके और इसके आधार पर आरक्षण का लाभ उठाकर समर्थ हो चुके लोगों को इसके दायरे से बाहर किया जा सके।

परन्तु सत्ता आधिक्य ने अपने राजनीतिक शक्ति का प्रदर्शन कर सरकार से इस प्रकार का मलाईदार वर्ग सृजित न करने का निर्णय करा लिया है। सत्ता दारिद्रयवर्ग यही कहकर रह गया है कि

''न कोई गिला हमको तुमसे, न कोई शिकायत दुनिया से।
दो–चार कदम जब मंजिल थी, किस्मत ने ठोकर मारी है।''[6]

---

1. सी.ए.डी. भाग ग्यारह, पृ. 979.
2. वी. आर. कृष्ण अय्यर : जस्टिस एण्ड वियान्ड, 1980, पृ. 157–58.
3. वी. आर. कृष्ण अय्यर : माइलेज एण्ड टेररिज्म (1979) 4 सु.को.के. जर्नल 6 पृ. 7.
4. वी. आर. कृष्ण अय्यर : जस्टिस एण्ड वियान्ड, 1980, पृ. 158.
5. दैनिक जागरण, 2 अगस्त 2024, वाराणसी.
6. दैनिक जागरण 10 अगस्त 2024, वाराणसी, पृ. 1.

ऐसे वर्ग को न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्णा अय्यर ने नगरों में पसीना बहाने वाले तथा बोलते बैल से खेत जोतनेवाले की संज्ञा दी है। यह वह वर्ग है, जो सदियों से शोषण की ज्वाला में जलता रहा है, परन्तु जिसकी अर्थी अंधेरे में ही उठी है, जिनके दुख की गाथा लिखने को इतिहासों की स्याही नहीं मिल पायी है जो अपने सपनों की लाशों को कफन में बाँधकर बैठे हैं। सामाजिक न्याय की अवधारणा उन्हीं को आरक्षण देकर सशक्त करने की अवधारणा है। आरक्षण की कवच उन्हें उस अधिकारिता से उठाता है, जिन्हें प्रसिद्ध न्यायविद सामण्ड ने[1] इन शब्दों में व्यक्त किया है। ''अधिकार वाले दूसरों के साथ विधिक सम्बन्धों को निर्धारित करने की क्षमता है या अपनी स्वयं की क्षमता को सुनिश्चित करने का साधन है। प्रथम प्रकार के अधिकार का स्वरूप पर दूसरों पर अधिपत्य स्थापित करना है जिसे अधिकारिता कहते हैं। दूसरे प्रकार के अधिकार का नाम क्षमता है।

अतः उन्हें आरक्षण का यथार्थ लाभ देकर इस वर्ग से मलाईदार वर्ग को पृथक करना समय की माँग है। सत्ता–अधिक्य तथा सत्ता दारिद्रय को एक ही कानूनी पलड़े पर रखना उत्पीड़न का उत्कृष्ट उदाहरण है। अन्थोनी की लेस्टर के अनुसार शेर और बैल दोनों पर एक ही विधि लागू करना उत्पीड़न है।''[2]

मानीय न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर के अनुसार अनुभवों के अनुसार यह स्पष्ट है कि आरक्षण का सर्वप्रथम खतरा यह है कि इसका पूरा लाभ पिछड़े वर्गों के सम्पन्न लोगों को मिल जाता है, या वे ये सुविधाएँ वंचितों तथा कमजोर वर्गों से स्वयं के लिए छीन लेते हैं और उन्हें सदा के लिए गरीब और कमजोर बने रहने देना चाहते हैं। साथ ही यह वर्ग शिक्षा तथा नियोजन में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सामाजिक रूपान्तरण के साथ अति सम्पन्न होकर भी इस लाभ को सदा लेने के लिए आरक्षण के कवच का सहारा लेने के लिए पिछड़े वर्ग के आवरण में लिपटे रहना चाहते हैं।[3]

के.सी. वसन्त कुमार बनाम कर्नाटक राज्य[4] में न्यायमूर्ति चिन्नमा रेड्डी ने यह कहा था कि इसका कोई कारणा नहीं दीखता कि पिछडे वर्ग तथा अत्यधिक पिछड़े वर्गों के रूप में वर्गीकरण क्यों नहीं हो सकता। अत्यधिक पिछड़ों की सहायता के लिए ऐसा वर्गीकरण आवश्यक है। ऐसा न होने पर पिछड़े वर्ग के सम्पन्न मलाईदार वर्ग सारी सुविधाओं का उपभोगी बन जाएगा।

इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ[5] में न्यायमूर्ति सावन्त ने यह कहा है कि यदि पिछड़े वर्ग के विकसित एवं समृद्ध लोग ऐसी परिस्थिति में पहुँच चुके हैं जहाँ वे अगड़ों से पूर्णतः प्रतिद्वन्दिता करने में सक्षम है, तो उन्हें अनुच्छेद 16(4) के लाभ से वंचित कर देना चाहिए।

प्रो. लास्की के अनुसार समता का तात्पर्य यह है कि समाज के किसी भी व्यक्ति को ऐसे सुविधाओं से सम्पन्न नहीं कर दिया जाए कि वह अपने पड़ोसी की समता के सभी अवसरों को निगल जाए। समता का तात्पर्य समान व्यवहार से नहीं है परन्तु इसका तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा वंचित लोगों को समृद्ध लोगों के बराबर लाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाए।[6]

आरक्षण की अवधारणा पिछड़े स्तर को ऊँचे स्तर पर ले जाने का उपकरण है। यह तभी सम्भव है जब अधिकार सम्पन्न लोगों के अधिकारों में कटौती कर अधिकार विपन्न लोगों को अधिकार से युक्त किया जाय। 'यदि राज्य को अपने अस्तित्व में बना रहना है, तो उसे सदा उन लोगों की मांगों के अनुसार अपने को बदलना होगा, जिनका राष्ट्र की उन वस्तुओं पर समान रूप से दावा है जो सर्वत्र जनित कल्याण की वस्तु

1. ज्यूरिप्रुडेन्स 12वां संस्करण, एन.एम. त्रिपाठी प्राईवेट लिमिटेड, बाम्बे, 1966, पृ. 230.
2. बी.बी.सी. वार्ता, विधि का दोष है। 1970.
3. केरल राज्य बनाम एन.एम. थामस, ए.आई.आर. 1976 सु.को. 490 पृ. 530.
4. ए.आई.आर. 1985 सु.को. 1645.
5. ए.आई.आर. 1993 सु.को. 447 का 677.
6. प्रो. लास्की : ए ग्रामर ऑफ पालिटिक्स, एलन एण्ड अनविन, लन्दन, 1930, अध्याय 4

है। मनुष्य को अपने व्यक्तिगत हितों को सार्वजनिक हितों के अधीन करने की पद्धति सीखनी चाहिए। कुछ लोगों के विशेषाधिकारों को अन्यों के अधिकारों के सम्मुख समर्पण करना होगा। ऐसा करने पर ही स्थिरता का पर्यावरण सृजित हो सकता है।

अतः यदि हम आरक्षण की अवधारणा के द्वारा वंचितों की समान अवसर प्राप्ती के मार्ग को क्षमता से युक्त करते हैं तो समान अवसर प्राप्त करने का पथ भी सरल हो जाता है और फिर हम उस स्थिति को टाल सकते हैं जहाँ कुछ ही लोगों के हाथ में सम्पत्ति केन्द्रित हो और उसके बल पर वे गरीबों और असहायों का शोषण करते रहे। असमान समाज में ही लोग दूसरे की मजबूरी और पीड़ा का लाभ उठाकर अपनी सुख समृद्धि की वृद्धि करते हैं। इसको स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध अंग्रेज कवि मैथू आरनाल्ड ने यह कहा है कि "Our inequality materializes our uper class, vulgarizes our middle class brutalizes our low er." अर्थात् जब समाज में असमता होती है तो उसका लाभ उठाकर उच्च वर्ग के लोग समृद्ध से समृद्धतर होते जाते हैं जबकि मध्यवर्ग में इसके कारण गवारूपन और पिछड़ापन आता जाता है। निम्न वर्ग ऐसी असमता से अपने अन्दर कठोरता एवं निरसता का भाव पैदा कर लेता है जो सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करता है।[1]

वस्तुतः आरक्षण की अवधारणा इस बिन्दु को रेखांकित करती है कि ऐसे लोग जिन्हें आरक्षित श्रेणी में रखा जाना वांछनीय नही है, तथा ऐसे लोग जिनका समावेश उस श्रेणी में आवश्यक है, की पहचान कर विधि के समान संरक्षण तथा प्रतिरक्षात्मक भेदभाव का लाभ दिया जाय।

आरक्षण का कवच सामाजिक न्याय की अवधारणा का एक पहलू है। सामाजिक न्याय अपने चिन्हित पहलू में प्रत्येक प्रकार की असमता का समापन तथा प्रत्येक नागरिक को सामाजिक गतिविधियों तथा आर्थिक कार्यक्रमों में समान अवसर प्रदान करने को समेटे हुए हैं।[2] श्री दीपांकर गुप्ता के शब्दों में[3] आरक्षण को छद्म स्वरूप से बचाने के लिए तथा आरक्षण की नीति ऋजुतापूर्ण तथा न्यायोचित बनी रहे, तथा अवसरवादी इसका अनुचित लाभ न ले सके, इसके लिए आवश्यक है कि अनुसूचित जाति तथा जनजाति से क्रीमीलेयर को हटा दिया जाय। यदि क्रीमीलेयर वर्ग, जो सुविधा प्राप्त कर उच्च प्रास्थिति प्राप्त कर चुका है, सदा के लिए सुविधाभोगी बना रहेगा तब अनुसूचित जाति तथा जनजाति के उस वर्ग को आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलेगा, जो दुर्भाग्य से ग्रस्त है।[4] स्पष्टतः यदि अनुसूचित जाति तथा जनजाति का अभ्यर्थी ने आरक्षण का दावा कर उसका लाभ ले लिया है, तो पुनः लाभ लेने हेतु निर्योग्य घोषित कर देना चाहिए। हमें इस सन्दर्भ में एन्ड्रे वेटिली की इस चेतावनी को ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे समाज में अतीत में इस विश्वास को बढ़ाकर भयंकर गलती की है कि दक्षता व्यक्ति में नहीं होती, वर्ग विशेष में होती है, तथा ब्राह्मण कुल में जन्म लेना दक्षता का स्वतः प्रमाण है। हम पुनः वही गलती करेंगे जब हम दक्षता को व्यक्ति के साथ न जोड़कर वर्ग के साथ जोड़ेंगे तथा इसी बात को रेखांकित करते रहेंगे कि आवश्यकता भी व्यक्ति की नहीं वर्ग की है।[5] इससे बचने के लिए मलाईदार तबके को बाहर करना आवश्यक है।

न्यायालय ने ऐसा सुझाव देकर न्यायपालिका के पावन कर्तव्य का पालन किया है। बहुत पहले इस कर्तव्य को इंगित करते हुए न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर ने यह कहा था कि एक न्यायाधीश के क्षेत्राधिकार का प्रथम बिन्दु सर्वसाधारण, दुर्व्यवहार वर्ग, दिव्यांग वर्ग, अल्पसंख्यक (भाषाई तथा धार्मिक) शहरी पसीना

---

1. ए.अप्पादोराई की पुस्तक 'द सबस्टेन्स ऑफ पालिटिक्स,' आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1942, पृ. 97 पर उद्धृत।
2. पूर्व मुख्य न्यायाधीश, डॉ. पी.जी. गजेन्द्र गड़कर ला, बिर्टी एण्ड सोशन जस्टिस,1965, पृ. 27–29.
3. लिमिट्स ऑफ रिजर्वेशन (मई 2005) सेमिनार 22 से 24.
4. सी.वी. राजू : सोशल जस्टिस अण्डर इन्डियन कांस्टीट्यूशन सीरियल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2006, पृ. 211–212.
5. द आइडिया ऑफ नेचुरल इन इक्वालिटी एन अदर एसेज आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू देलही, 2003, पृ. 129.

बहानेवाले मजदूर, देहातों में हल जोतनेवाले श्रमिक, इन सबके सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का समाधान करना है, जो भारतीय संविधान की प्रस्तावना तथा भाग तीन एवं भाग चार के अन्तर्वस्तु हैं।[1]

स्पष्टतः हमारी न्यायपालिका ने क्रीमीलेयर की उद्‌भावना को अनुसूचित जाति तथा जनजाति पर लागू करने का सुझाव देकर इसी न्यायोचित कर्तव्य का पालन किया है।

अपने अद्यतनीय निर्णय में शीर्ष न्यायालय ने अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) के आरक्षण की मौजूदा व्यवस्था को प्रभावित करने वाला ऐतिहासिक फैसला सुनाया है। शीर्ष अदालत ने कोटे में कोटा यानी आरक्षण के भीतर आरक्षण पर मुहर लगाई है। शीर्ष कोर्ट ने एससी–एसटी वर्ग के आरक्षण में से क्रीमीलेयर को चिन्हित कर बाहर किए जाने की जरूरत पर भी बल दिया है। सुप्रीम कोर्ट की सात जजों की संविधान पीठ ने 6–1 के बहुमत से दिए फैसले में कहा कि अनुसूचित जाति वर्ग के ही ज्यादा जरूरतमंदों को आरक्षण का लाभ देने के लिए राज्य उनका उपवर्गीकरण कर सकते हैं।

सुप्रीम कोर्ट की सात सदस्यीय संविधान पीठ ने अनुसूचित जातियाँ एवं जनजातियाँ यानी एससी–एसटी के आरक्षण के उपवर्गीकरण का जो फैसला दिया, वह इन समुदायों के आरक्षण को और अधिक न्यायसंगत बनाने और साथ ही सामाजिक न्याय के उद्देश्य को पूरा करने वाला है। एक लंबे अर्से से यह महसूस किया जा रहा था कि एससी–एसटी समुदाय की कुछ जातियां तो आरक्षण का पर्याप्त लाभ उठा रही है, लेकिन कुछ को उसका वांछित लाभ नहीं मिल पा रहा है और इसके चलते वे समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पा रही हैं। इसके साथ ही उनका सामाजिक–आर्थिक उत्थान भी नहीं हो पा रहा है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले ने 2004 की पांच सदस्यीय संविधान पीठ के फैसले को पलट दिया। उस फैसले में कहा गया था कि एससी–एसटी समुदाय की जातियां एकसमान हैं और उनका उपवर्गीकरण नहीं किया जा सकता। सुप्रीम कोर्ट की सात सदस्यीय पीठ ने इससे असहमति जताते हुए कहा कि एससी–एसटी समुदाय की जातियों हैं। वास्तव में इन समुदायों की जातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में अंतर ही नहीं है, बल्कि उनके बीच ऊँच–नीच का भाव भी है।

सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश ने यह बिल्कुल सही उदाहरण दिया कि दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफंस अथवा महानगरों के किसी अन्य प्रतिष्ठित कालेज में पढ़ने वाले छात्र और किसी ग्रामीण क्षेत्र के कालेज में पढ़ने वाले छात्र की स्थिति को एक जैसा नहीं कहा जा सकता। सुप्रीम कोर्ट ने एससी–एसटी के आरक्षण में क्रीमी लेयर की व्यवस्था लागू करने की भी आवश्यकता जताई। यह इसीलिए जताई, क्योंकि एक तो ओबीसी आरक्षण में क्रीमीलेयर लागू है और दूसरे एससी–एसटी समुदाय में अनेक लोग ऐसे हैं, जो आर्थिक एवं सामाजिक रूप से कहीं अधिक सक्षम एवं सम्पन्न हैं। एसी–एसटी समाज की जातियों में उपवर्गीकरण करके उन्हें आरक्षण प्रदान करने से उन लोगों के सामाजिक उत्थान में आसानी होगी, जो अब भी पिछड़े हुए हैं।[2]

इस निर्णय के आने के पहले तथा न्यायालय द्वारा उपवर्गीकरण की स्वीकृति तथा अस्वीकृति के अन्तराल में अनेक राज्यों ने कोटे के अन्तर्गत कोटे का प्रावधान कराया है। उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश में पिछड़े वर्गों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है–

(1) प्रथम वर्ग– आदिम जनजातियाँ, विमुक्त जाति, यायावर या घुमन्तु जातियाँ।
(2) द्वितीय वर्ग– पेशागत वर्ग बुनकर, लोहार, सुनार।
(3) तृतीय वर्ग– अनुसूचित जातियों का वह समूह जो ईसाई धर्म स्वीकार कर चुका है।
(4) वे सभी जातियाँ जो वर्ग एक, दो तथा तीन में सम्मिलित नहीं है।

---

1. इन्डियन सोशल जस्टिस इन क्राइसिस अफीलिएटेड इस्ट–वेस्ट प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1983, पृ. 109.
2. दैनिक जागरण 4 अगस्त 2024, वाराणसी, पृ. 10.

श्री कर्पूरी ठाकुर के मुख्य मंत्रित्व काल में पिछड़े वर्गों के लिए मुंगेरी लाल आयोग का गठन किया गया था। इस आयोग ने पिछड़े वर्गों को पिछड़ा वर्ग तथा अति पिछड़ा वर्ग इन दो वर्गों में विभक्त किया था। 1978 में श्री ठाकुर ने आयोग के इस सूत्र को लागू करने का आदेश दिया था। यह सूत्र ''कर्पूरी फार्मूला'' के नाम से जाना जाता है। इस सूत्र में राज्याधीन सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिए 80 प्रतिशत, अति पिछड़े वर्गों के लिए 12 प्रतिशत, अनुसूचित जाति के लिए 14 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियों के लिए 11 प्रतिशत, महिलाओं के लिए 3 प्रतिशत स्थान आरक्षित किया गया था। वर्तमान सरकार ने भी इसी सूत्र पर कार्य करते हुए अति पिछड़ा तथा महादलित वर्ग का एक और उपवर्गीकरण किया है।

उत्तर प्रदेश में पहला कदम तत्कालीन मुख्यमन्त्री हेमवती नंदन बहुगुणा ने 1975 में छेदी लाल साथी आयोग का गठन करके किया। कर्पूरी ठाकुर और हेमवती नंदन बहुगुणा समकालीन थे और बहुगुणा से पहले बिहार में मुंगेरीलाल कमीशन का गठन हो गया था। साथी आयोग ने उत्तर प्रदेश के पिछड़े वर्ग की तीन श्रेणियां विभाजित कीं। जिसमें कुल 29.5 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। आयोग ने पहली श्रेणी में भूमिहीन और अकुशल मजदूरों को 17 प्रतिशत, दूसरी श्रेणी में दस्तकार और किसानों को 10 प्रतिशत और तीसरी श्रेणी में मुस्लिम पिछड़ी जातियों को 2.5 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की, लेकिन कई कारणों से बहुगुणा सरकार इन सिफारिशों को लागू नहीं कर सकी। उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे राजनाथ सिंह ने 2001 में हुकुम सिंह की अध्यक्षता में सामाजिक न्याय समिति का गठन किया था। उसके गठन का प्रमुख उद्देश्य आरक्षण के लाभ की जांच करना था। समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि आरक्षण का लाभ उन लोगों तक नहीं पहुंचा है जिनके लिए यह लक्षित था। उसने अनुसूचित एवं पिछड़ा वर्ग की सूची को उपवर्गीकृत करने की सिफारिश की, ताकि अतिवंचित तबके भी आरक्षण का लाभ उठा सकें। समिति ने पिछड़ा वर्ग के आरक्षण को तीन वर्गों में बांटने का सुझाव दिया। उसने पहले वर्ग के लिए पांच प्रतिशत, दूसरे वर्ग में शामिल कुल आठ अतिपिछड़ी जातियों के लिए नौ प्रतिशत, तीसरे वर्ग में शामिल 70 सर्वाधिक पिछड़ी जातियों के लए 14 प्रतिशत आरक्षण की संस्तुति की। इस पर खूब विवाद हुआ। अंततः ये सिफारिशें भी लागू नहीं की जा सकीं।

वस्तुत अतिपिछड़ा वर्ग बहुसंख्यक जातियों का विविध समूह है, जिसके अन्तर्गत कारीगर, बुनकर, श्रमिक, मछली पालने वाली, नृत्य और गायन करने वाली जातियां एवं बागवानी आदि करने वाली जातियां शामिल हैं। ये जातियां आज भी आरक्षण व्यवस्था में नहीं आ पाई हैं। ये सारी जातियां व्यक्तिगत सेवाएं देने वाली तथा न्यूनतम भूमि का स्वामित्व रखने वाली जातियां हैं। इनमें से कुछ ऐसी भी जातियां हैं, जिनके साथ छुआछूत जैसा सामाजिक भेदभाव होता है। इसलिए ये जातियां अनुसूचित जाति की सूची में रखे जाने की अर्हता रखती हैं। भाजपा का सबसे बड़ा वोट बैंक भी यही अतिपिछड़ी जातियां हैं जिन्हें सरकार से यह उम्मीद है कि वह उनकी भागीदारी के लिए रोहिणी कमीशन की रिपोर्ट को लागू करेगी, लेकिन अब तक यह रिपोर्ट न प्रकाशित की गई है और न ही इसे लागू किया गया है।[1]

उप वर्गीकरण का सन्दर्भ प्राचीन भारतीय मनीषा में दृष्टिगोचर होता है, ऋग्वेद में यह कहा गया है कि सृष्टि के सभी लोग आपस में भाई हैं न कोई ज्येष्ठ है न कोई कनिष्ठ है। अतः हमें सबके हितों का संरक्षण करते हए सामूहिक रूप से विकास के पथ पर आगे बढ़ाना चाहिए।[2]

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एवे सं भ्रातरोवाावृद्युः सौभगाय।

इसी तरह अथर्ववेद में भी समज्ञान सूक्त में यह कहा गया है कि सभी व्यक्तियों को राष्ट्र की नैसर्गिक सम्पदा जैसे पानी एवं भोज्य पदार्थ की सामाग्री पर समान अधिकार है। जीवन के रथ का अग्र भाग

1. वर्गीय एकता टूटने की चिन्ता अनुचित : के.सी. त्यागी, दैनिक जागरण, 7 अक्टूबर 2024, पृ. 6
2. ऋग्वेद 5/60/5 श्लोक

सबके कंधों पर समान रूप से रखा गया है जिससे सभी लोग समान रूप से एक–दूसरे के साथ सामन्जस्य बनाकर अपना जीवनयापन करे और एक दूसरे का सहयोग उसी प्रकार करे जिस प्रकार रथ के पहिये का चक्का एक–दूसरे को जोड़ता हुआ अपना कार्य करता है।[1]

समानी प्रपा सह वोन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि
अराः नभिभिवाभितः

भारतीय परम्परा समता की संकल्पना को लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा से जोड़ती है तथा असहायों रोगियों तथा दूर्बल लोगों को समता की अनुभूति कराने के लिए उन्हें अन्यों की उपेक्षा विशेष सुविधा प्रदान कर समता को क्षमता से जोड़ देती है।

लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा निरंकुशता तथा मनमानीपन को मिटाकर सामाजिक हित को सर्वोपरि महत्व प्रदान करती है। ऐसे राज्य में लोकहित तथा लोक की मंगल–रंजन कामना को मान्यता प्रदान कर विधि के शासन को व्यक्ति तथा समाज के हितों का अवधारक बना दिया जाता है। कौटिल्य ने लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये यह कहा है कि जनता की प्रसन्नता एवं जनता के लिये कल्याणकारी कार्यों के संपादन में ही राजा या प्रशासन की प्रसन्नता या कल्याण निहित है–

''प्रजासुखे सुखं राजः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राजः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।
तस्मानि व्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।[2]

महाभारत में कहा गया है कि राजा का मुख्य कार्य असहायों, वृद्धों, विकलांगों, अंधो, अनाथों, विधवाओं, आपदग्रस्त व्यक्तियों, गर्भवती महिलाओं, असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को भोजन, घर, वस्त्र, दवा एवं उनकी आवश्यकता की सभी वस्तुओं को प्राप्त कराकर उनका योग क्षेम या उनके कल्याण को सुनिश्चित करना है–

''कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम्।
योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत।।
आश्रमेषु यथाकालं चैलभाजनभोजनम्।
सदैवोपरेद्राजा सत्कृत्याभ्यर्च्य मान्य च।।[3]

मनु ने लोककल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि असहायों, रोगियों एवं दुर्बल तथा अवयस्क लोगों की रक्षा करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है। इसको वृहद रूप में स्पष्ट करते हुये महाभारत में कहा गया है कि राजा का मुख्य कार्य असहायों, वृद्धों, विकलांगों, अंधो, अनाथों, विधवाओं, आपदग्रस्त व्यक्तियों, गर्भवती महिलाओं, असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को भोजन, घर, वस्त्र, दवा एवं उनकी आवश्यकता की सभी वस्तुओं को प्राप्त कराकर उनका योग क्षेम या उनके कल्याण को सुनिश्चित करना है–

''कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम्।
योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत।।
आश्रमेषु यथाकालं चैलभाजनभोजनम्।
सदैवोपरेद्राजा सत्कृत्याभ्यर्च्य मान्य च।।[4]

---

1. सूक्त 39
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र, मैसूर विश्वविद्यालय, चतुर्थ संस्करण, 1960, पृ. 42.
3. शान्तिपर्व 36/24–25, ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट, पूना
4. वही।

योगक्षेम के निवर्हन के मामले में राजा को सदैव जनता के कल्याणकारी कार्यों में अपने कर्मचारियों को लगा देना चाहिए। यही मनु के अनुसार वास्तविक राजधर्म है–

''एवं चरन् सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान् भृत्यान् नियोजयेत्।।''[1]

लोककल्याकणकारी राजा में राज्य के कर्तव्य को इंगित करते हुए महर्षि अत्रि ने यह कहा है कि राजा का मुख्य कर्तव्य दुष्टों को दण्डित करना, सज्जनों का सम्मान करना, न्यायोचित ढंग से राज्य के कोष की वृद्धि करना, पक्षपात विहिन निर्णय देना तथा प्रत्येक परिस्थिति में राष्ट्र की रक्षा में संलग्न रहना, राजा के पाँच यज्ञ अर्थात् निःस्वार्थ कर्तव्य है–

''दुष्टस्य दण्ड सुजनस्य पूजा न्यायेन कोषस्य च सप्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पन्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्।।''[2]

इसी बात को आचार्य शुक्र ने भी कहा है कि राजा का सर्वोच्च धर्म या कर्तव्य, प्रजा का संरक्षण एवं लोक कल्याण करना है तो दुष्टो का दमन करना है।

''नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम्।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं न नीत्या ते विना ह्युमे।।[3]

लोककल्याणकारी राज्य में समता के सिद्धान्त का विशेष महत्व होता है, जहाँ पद, प्रतिष्ठा, प्रास्थिति या परिसम्पत्ति के आधार पर भेद–भाव करने की मनाही है। समता द्वारा ही भ्रातृत्व की भावना का विकास करने की शिक्षा हमारे वेदों ने हमें दी है। ऋग्वेद में यह कहा गया है कि–

''अष्येट्ठाासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरोवावृद्युः सौभगाय''।[4]

मनु ने भी यही कहा है कि राजा को अपनी समस्त प्रजा का संरक्षण, परिपालन बिना किसी भेद–भाव के उसी प्रकार करना चाहिये जिस प्रकार यह धरा अपने ऊपर निवास करने वाले सभी प्राणियों का करती है–

''यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः प्रार्थिवं व्रतम्।।[5]

भारतीय संविधान एवं विधिक व्यवस्था ने सामाजिक न्याय के लिए व्यापक संवैधानिक एवं वैधानिक ढॉचा निर्मित किया है, परन्तु सामाजिक न्याय की वास्तविक प्राप्ति कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन, न्याय तक समान पहुॅच, सकारात्मक कार्यवाही की प्रभावशीलता तथा सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन पर निर्भर करती है।

समाजिक न्याय का अन्तिम लक्ष्य केवल असमानता को दूर करना नही है, बल्कि ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक असमानताओं को दूर करके प्रत्येक व्यक्ति को गरिमा, समान अवसर और न्याय तक पहुॅच प्रदान करना है।

Declaration by Author (s): *"I/We hereby declare that this manuscript is my/our original work, free from plagiarism, and that all sources and any use of Artificial Intelligence tools for content generation or editing have been fully disclosed and verified for accuracy."* डॉ. सुरेन्द्र नाथ यादव

---

1. मनु 9/324, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी
2. अत्रि स्मृति 1/28, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी
3. शुक्रनीति 1/27–28, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी
4. ऋग्वेद, 5/60, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी
5. मनु 9/311, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी